International Research Journal ISSN-0975-3486 RNI : RAJBIL 01488 VOL. I * ISSUE—1

शोध पत्र–हिन्दी

SEPT—2009

हिन्दी कूटकाव्य की परम्परा एवं स्वरूप का तात्विक अनुशीलन कबीर एवं सूर के विशेष परिप्रेक्ष्य में

डॉ. कृष्ण बीर सिंह

अध्यक्ष-हिन्दी विभाग, एस. एस. जी. पारीक (पी.जी.) कॉलेज, जयपुर

हिन्दी में कूट काव्य की अत्यन्त समृद्ध परम्परा दिखाई देती है। किन्तु इससे पूर्व 'कूट' शब्द के उद्भव विकास की ऐतिहासकि पृष्ठभूमि पर चिन्तन किया जाना अनिवार्य इसलिए है कि उक्त शब्द के द्वारा ही हिन्दी में एक अभिन्न परम्परा का उद्भव हो पाया है।

'कूट' में 'अच्' या 'घञ' प्रत्यय जुड़कर बना है तथा यह परिस्थिति, काल, व्यवहार आदि के अनुसार अपने विभिन्न अर्थो के साथ प्रस्तुत होता है। इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद[1] में मिलता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह शब्द अत्यन्त प्राचीन संस्कृत भाषा का है। यद्यपि यह शब्द धातु चुरादिगणी है जिसके विभिन्न स्वरूप हैं। वहीं ऋग्वेद में यह शब्द प्रहेलिका मन्त्रों में प्रयोग हुआ है। इस शब्द के व्यवहारिक रूप को देखते हैं तो यह हमें विभिन्न अर्थों में दिखाई देता है जैसे- प्रहेलिका, व्यंग्यवाक्य, छल, झूठ, मिथ्या, माया, पिंजरा, जाल, भ्रष्ट, गूढ़ प्रश्न, मुकुट आदि-आदि।

वास्तव में यह शब्द सामाजिक राजनैतिक, साहित्यिक, व्यक्तिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अपने स्वतन्त्र रूप में प्रयोग हुआ है। यहीं कारण है कि 'कूट' शब्द स्वतन्त्र रूप में हजारों अर्थों के साथ प्रस्तुत है।

संक्षेप में, रामचरित मानस के बालकांड पृष्ठ 146 में उल्लेख है–

'करहिं कूट नारदहि सुहाई,
नीक दीन्ह हरि सुन्दरताई।'

... यहाँ परिहास के सन्दर्भ में अर्थ लगता है वहीं बाणभट्ट रचित हर्ष रचित में 'जल-कलश' अर्थ में उल्लेख है। महाभारत में इस शब्द का अर्थ 'कपटी' में एवं वाल्मिकी रामायण में 'गृहकोष्ठ'[3] अर्थ में दिखाई देता है।

व्यवहृत हिन्दी भाषा में इसका अर्थ-पीटना या अन्न आदि कूटने से भी लगाया जाता है। आयुर्वेद में यह शब्द औषधि विशेष के लिए प्रयुक्त हुआ है।

जैसाकि पूर्व में कह चुका हूँ प्रस्तुत शब्द 'कूट' परिस्थिति, काल, परिवेश, आवश्यकता आदि के अनुसार व्यवहृत होता आया है। किन्तु जब हम इस शब्द की साहित्यकि यात्रा को देखते हैं एवं तदानुसार इसके अर्थ को देखते हैं तो हमें इसके यहाँ भी विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। महाभारत, रामायण, ऐतरेय ब्राह्मण (6-24) आदि ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। हिन्दी साहित्य में यह शब्द 'दृष्टिकूट' या 'दृष्टकूट' रूप में खूब व्यवहृत्त हुआ है।

अंग्रेजी मे इसे 'आब्लीक' अथवा 'एनिगमेटिक' कहते हैं। इलियट के काव्य में कूटकाव्य के स्पष्ट दर्शन होते हैं। ऑब्लीक के सन्दर्भ में ई. एम. डब्ल्यू. टिलियर्ड ने कहा है– "Poetry which expresses a mental experience not by direct statement but obliquely by implication"[4]

निष्कर्षत: उपनिषदों[5], भागवत[7], ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण, वेदों[6], पुराणों, महाभारत, रामायण आदि से चलते हुए यह शब्द जब आगे बढ़ा है तो प्रहेलिका में, सिद्ध साहित्य में सन्धाभाषा रूप में[8] नाथपंथी योगियों ने[6] विपर्यय' रूप में[9] कबीर में उलटवाँसी

रूप में 'कूट' शब्द का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। काव्य के साथ जब यह शब्द जुड़ा तो यह कूटकाव्य के रूप में प्रस्तुत होकर साहित्य में विभिन्न रूपों-स्वरूपों के साथ विशेष अर्थ में रूढ़ता पा गया। अनेकों स्थान पर कवि अपने काव्य में विशिष्ट चमत्कार प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ऐसे काव्य की रचना करता है जहाँ शब्दार्थ किसी प्रसंग या गूढ अर्थ में प्रस्तुत होता हो अथवा भाव व अर्थ विशेष व्याख्या को उल्लेखित करके काव्य में ऐसा चमत्कार उत्पन्न कर दे कि सामान्य अर्थ गौण होकर कवि का पाण्डित्य सहज ही प्रदर्शित होने लगे। हिन्दी कूटकाव्य परम्परा में कूटकाव्य की रचना का एक उद्देश्य यह भी रहा है कि पाठक अथवा श्रोता की मानसिक एकाग्रता को व्यवस्थित करके ईश्वर, जीव और जगत् का सहज ज्ञान करवाया जाये। कभी-कभी कवि अपनी कविता को कौतुहल या विस्मयपूर्ण बनाने के उद्देश्य से कूटकाव्य प्रवृत्ति को अपनाता है। किन्तु सर्वाधिक यह देखा एवं पाया गया है कि हिन्दी कूट काव्य में दार्शनिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना एवं धार्मिक विचारों, क्रियाओं के गूढ़ रहस्य की रक्षार्थ कूट काव्य की रचना की जाती है। इसके सामान्यत: दो रूप दिखाई देते हैं-1. दृष्टकूट 2. उलटवाँसी।

दृष्टकूट में जहाँ पाण्डित्य प्रदर्शन एवं कौतुहलता काव्य उद्देश्य होता है जिससे गुह्य साधना एवं अनुभूति को अभिव्यक्त करने हेतु इसे आश्रय रूप में प्रयोग किया जाता है वहीं उलटवाँसी परम्परा निर्गुण सन्त कवियों, सिद्धों एवं नाथ पंथियों द्वारा व्यवहृत की गई है जो आध्यात्मिकता एवं रहस्यात्मकता को उल्लेखित, प्रदर्शित एवं अभिव्यक्त करने हेतु प्रयोग में लाई गई।

कूटकाव्य शैली के स्वरूप से अपरिचित पाठक या श्रोता की प्रारम्भिक अनभिज्ञ स्थिति अत्यन्त असंभावित, अतार्किक एवं उहा-पोह से परिपूर्ण होती है किन्तु जैसे ही उसे प्रतीकों के अर्थों का ज्ञान होता है वह तन से नहीं अपितु मानसिक रूप से सन्तुष्ठि एवं तृप्ति का अहसास करता है जो उसे विभिन्न प्रसन्नताओं एवं आन्ददायिनी रूप में प्राप्त होती है।

निष्कर्ष: कूटकाव्य में प्रतीकों का अपना एक महत्त्व एवं सम्मान है। इन प्रतीकों में शब्द वैचित्र्य, काव्यात्मक जटिलता पूर्णत: समाहित होती है जो अर्थ-भाव में गहराई एवं भाषा में एक विशिष्ट उदात्तता को प्रदर्शित करने की शक्ति रखती है। कूटकाव्य की कलात्मक परम्परा का हिन्दी में निर्वाह करने वाले प्रथम कवि चन्दबरदाई को माना जाता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' में इस परम्परा का सफल निर्वाह किया है। इसी भाँति विद्यापति के पदों में भी कूटकाव्य सम्बन्धी अनेकों पद देखने को मिलते हैं।

कूटकाव्य परम्परा में हमें कबीर और सूरदास का अप्रतिम योगदान दिखाई देता है। कबीर ने उलटवाँसियों के द्वारा एवं सूरदास के दृष्टकूट पद हिन्दी साहित्य में अपना अभिन्न स्थान रखते हैं। उलटवाँसियों का सीधा सम्बन्ध मध्यकालीन निगुर्ण ऐसे सन्तकवियों से है जिन्होंने विभिन्न गूढ़ प्रतीकों के माध्य से अहंकार एवं मिथ्या जीवन-जगत् से परिचित कराने की सफल कौशिक की है।

उलटवाँसी शब्द पर विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। जबकि कुछेक विद्वानों के मध्य इस शब्द के स्वरूप पर मतभेद है। हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे उलटबासी कहते हैं। डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एक वचन के लिए उलटवाँसी एवं बहुवचन के लिए उलटवाँसिया शब्द का प्रयोग किया है। 'उलटवाँसी' कहने वालो में डॉ. रामकुमार वर्मा भी है जबकि रांगये राघव इसे उलाटबाँसी कहते हैं। विद्वानों का मत है कि इसमें 'वास' शब्द सीधे रूप में निवास अथवा रहना आदि अर्थ को अभिव्यक्त करता है जिसका सम्बन्ध मन से लगाया जा सकता है। अर्थात् मन के अलौकिक एवं अध्यात्मिक निवास की अवस्था है उलटवाँसी है। उलवाँसी की उत्पत्ति मन की वह वंशी जो अनहदनाथ उत्पन्न करके विचारात्मक एवं आध्यात्मिक अनुभूति-व्यक्त करने में सक्षम है किन्तु कथन के स्वरूप के आधार पर उलटी व टेढ़ी दिखाई देती हे। वास्तव में जग की दृष्टि भ्रमित व उलटी होने के कारण यह उलटी दिखाई देती है किन्तु जब यह जग के मिथ्या भ्रम को खण्डित करने में सफल होती है तो ''सुलटवाँसी'' हो जाती है। आत्मा और परमात्मा के रहस्य, दर्शन और सम्बन्धों के सत्य सेतु के रूप में उलटवाँसी का अपना विशिष्ट योगदान एवं महत्त्व है।

विभिन्न सन्त कवियों ने इस विधा को क्या-क्या कहा है- संक्षेप में देखेंगे-चरणदास इसे 'गुप्तमते की बात' कहते हैं तो उनकी शिष्या दयाबाई इसे 'अटपटी बात' कहती हैं। मलूकदास इसे 'अजब कथा', बुल्ला साहेब-'अचरज', दुलनदास-'गुप्त मर्म या गुप्तमते की बात', कबीरदास-'उलटी बेद, अकथ कहानी' कहते हैं।

शब्द व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में परशुराम चतुर्वेदी की मान्यता है कि यह शब्द उलटा और अंश से निर्मित है जो ऐसी रचना की ओर संकेत करती है जिससे अंशत: उलटी बातें कही गई हैं।

समस्त विवेचनोपरात्मक यह सिद्ध हो जाता है कि इस

परम्परा में शब्द को 'ब्रह्म' का साक्षात रूप स्वीकार किया गया है। जब तक इस रूप से व्यक्ति भिज्ञ नहीं होता तब तक वह इसे उलटा समक्षता रहता है किन्तु जैसे ही व्यक्ति इसके वास्तविक स्वरूप से साक्षात्कार कर भिज्ञ होता है तो वह इसके आध्यात्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप को पहचान कर समस्त भेदों, प्रभेदों को समाप्त कर देता है और जीवन के सत्य रूप को जानकर आगे बढ़ने लगता है। यह स्थिति अव्यक्त होती है, उस गूंगे व्यक्ति की भाँति जो आम के फल का स्वाद तो चखता है किन्तु व्यक्त करने में असमर्थ है। तभी तो समस्त सन्तों की वाणी एक ही स्वर में कह रही है- सूरदास-सूरसागर में कहते हैं-

'अविगत गति कछु कहत न आवै
ज्यों गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै॥'

इसी भाँति-कबीर कह रहे हैं-

''गूँगे केरि सरकार बैठा मुसकाई''

संक्षेप में यह स्पष्ट किया जाना अपेक्षित है कि उलवाँसी केवल हिन्दी में ही उपलब्ध नहीं है अपितु विश्व की लगभग समस्त भाषाओं में इस विधा का रूप किसी न किसी तरह दिखाई देता है। अंग्रेजी में रिडिल, मिस्ट्री, पजिलसिन व एनिगमा आदि शैलियाँ इस विधा के समतुल्य ही हैं इसी भाँति अरबी-फारसी साहित्य में भी 'इशारियत' रचना शैली इस विधा का स्वरूप कही जा सकती है।

किन्तु यदि हम अपने विभिन्न प्रदेशों के आँचलिक पद्य विघा का विश्लेषण करते हैं तो ज्ञान होता है कि हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों में उलवाँसी की भाँति ही विभिन्न आँचलिक नामों से सहोदर विघा उपलब्ध है। राजस्थान में 'हियाली' रचनाएँ बुद्धि परीक्षण एवं मनोरंजन हेतु प्रयुक्त होती हैं। विभिन्न जैन कवियों ने भी 'हियालियों' की रचना की है।

इसी भाँति बंगाल प्रदेश के 'बाउल गीत' एवं मराठी प्रदेश के 'भारूड़ गीत' इसी परम्परा के कहे जा सकते हैं।

जैसाकि पूर्व में उल्लेखित किया जा चुका है प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से कबीर एवं सूरदास द्वारा रचित उलटवाँसियों का तात्विक विश्लेषण करने का प्रयास किया जायेगा। यद्यपि कबीर एवं सूर की प्रकृति भिन्न-भिन्न दिखाई देती है किन्तु साहित्यिक धरातल पर विशेषत: उलटवाँसी धरातल पर क्या साम्यता है यहीं जाँचने का प्रयास किया जायेगा।

दोनों कवियों की प्रकृति, चिन्तन धरातल एवं काव्य विषय में साम्यता नहीं है। सूरदार की रचनाओं का मुख्य विषय श्रीकृष्ण की जीवन लीला है तो कबीर हठयोग साधना की मौलिकताओं का पालन करते हुए सार ग्रही बन नाथयोग, हठयोग औपनिषदक योग, पातंजल योग, तन्त्र योग आदि अनेकों योग साधनाओं को आत्मसात करते हुए दिखाई देते हैं। कबीर मन को भ्रममुक्त करने का आह्वान करते हैं तो सूर ने कृष्ण जीवन के विविध पक्षों को अपनी रचनाओं के माध्यम से एकात्मकताशैली में व्यक्त करने का उद्योग किया है। सूर की कूट रचनाएँ भक्ति भावना से प्रेरित शृंगारी काव्य व्याख्या में उद्घाटित हुई है जिसमें धार्मिक एवं लौकिक दृष्टि से गोपन की अपेक्षा हुई है। सूर हमारे समक्ष कृष्णभक्त कवि रूप में प्रस्तुत होते हैं जबकि कबीर का कद व स्थिति एक अध्यापक, साधक, उपदेशक व समाज निर्माता के रूप में दिखाई देता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कबीर का ज्ञान भारी दिखाई देता है किन्तु सूर अपनी विनयता को त्यागते नहीं हैं। सरल व सटीक विधि से वे अपने कूट पदों द्वारा सावचेत करते हैं। माया, जीवन और संसार के विषय में सूर कहते हैं-

''नारी एक दसौंदिसि विचरति अति सुन्दरी सुहागिनि।
प्रति प्रति सदन पुरुष कंठ विलसति तद्दपि पिय अनुरागिनि।
भरता जार गनत कुछ नाहीं संत कहहिं बैरागिनि।
तीनि काल सर्वोपरि राजति स्तबत देव मुनि नागिनि।''[10]

काम वासना से ग्रसित मन को कहते हैं-

''रे मन! समुझि सोचि बिचारि
भगति बिन भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि॥''[11]

×× ×× ××

रे मन! निपट निलज्ज अनीति
जियत की कहि को चलावै मरत विषयनि प्रीति।

यों तो सूर वात्सल्य वर्णन करने में सिद्ध हस्त हैं किन्तु उन्होंने कृष्ण के प्रति भक्ति भाव के व्यंजना पूर्ण पद एवं राधा की शृंगारी लीलाओं का जो वर्णन किया है वह अद्भुत है। इन्हीं शृंगारी पदों में वे कूट पद हैं जिनमें राधा कृष्ण व गोपियों की विविध क्रीड़ाओं का वर्णन है जिनमें शिष्टता सर्वेपरि रही है। इन शृंगारी कूट रचनाओं के विषय पर विचार करें तो इनमें मुख्य रूप से-राधाकृष्ण रति, प्रेमलीला (गोपी), दान लीला एवं रुपासक्ति आदि दिखाई देते हैं।

राधा के नख-शिख वर्णन की कुछ पंक्तियाँ देखिये-

''विराजति अंग-अंग इति बात।
अपने कर करि धरे विधाता, षट खग नव जलजात॥
द्वै पतंग ससि बीस एक फनि चारि विविध रंग घात।
द्वै पिक बिम्ब बतीस बज्रकन एक जलज पर घात।
द्वै मुनाला मालूर उभै कर द्वै कदली बिन पात॥

इक केहरि इक हंस गुपत रहे तिनहिं लग्यौ यह गात।
सूरदास प्रभु तुम्हरे मिलन कौं अति आतुर अकुलात॥''[13]

यहाँ सूर ने विभिन्न पक्षियों, पुष्प, फल एवं धातुओं के माध्यम से मानव शरीर के रहस्य का उद्घाटन किया है।

इसी भाँति-गूढ़ रहस्य का उल्लेख करते हुए सूर की ये पंक्तियाँ- ''**दान लैहों सब अंगनि कौं अतिमद गलित तालफल तैं गुरु इन जुग उरज उतंगनि कौं।**''[14]

निष्कर्षत: सूरदास के कूद पद सूरसागर एवं साहित्य लहरी ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं जिनमें विनय, अविद्या, तृष्णा, जगत, विनती, मन प्रबोध, बाल रूप, दधिलीला, बाल लीला, गौचारण, मुरलीवादन, रूपवर्णन के अतिरिक्त राधा के संग क्रीड़ा वर्णन, वृंदावन विहार, युगलरूप एवं राधा के नख-शिख, गोपियों की दशा, रति क्रीड़ा एवं राधा-कृष्ण रूप वर्णन आदि के माध्यम से कूट पदों की रचना की है। सूरदास अपने कूट पदों में कबीर की भाँति स्वतन्त्र दिखाई नहीं देते किन्तु भाव व अर्थ की तीक्ष्णता कहीं भी कमजोर नहीं पड़ी है। यद्यपि कबीर की भाँति कूट पदों का विषय क्षेत्र सीमित रह गया है।

कबीर उलटवाँसियों हेतु महान् रचनाकार के रूप में प्रस्तुत होते हैं। कबीर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सांगोपांग विवेचन करने के पश्चात् निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वे एक सम्पूर्ण व्यक्ति थे जिनमें ब्रह्मत्व का अंश सर्वाधिक तेजोमय था। कबीर ने आत्मा, परमादमा एवं प्रकृति के सम्बन्धों, अन्त: रहस्य को अत्यन्त सरल व सहज विधि से उल्लेखित, व्याख्यायित करके यह सिद्ध कर दिया कि मिथ्या गाल बजाने अथवा स्वयं भ्रमित होने या अन्यों के धर्म, जाति, सम्प्रदाय या देश-भाषा आदि पर भ्रमित करने से मानव जाति का भला नहीं हो सकता। अत: जब हम कबीर की उलटवाँसियों का विवेचन करते हैं तो इनकी उलटवाँसियाँ विभिन्न वर्गों में विभाजित हो जाती हैं जिनमें मुख्यत: उपदेशात्मक, मोह-माया सम्बन्धी, सृष्टिपटक, विरक्तिमूलक, योग-साधनात्मक एवं भाव प्रधानात्म उलटवाँसियों के अलावा संख्या सम्बन्धी एवं गूढ़-रहस्य से सम्बन्धित उलटवाँसियों की पर्याप्त संख्या है।

मोह-माया के विषय में यो तों लगभग समस्त सन्तों, सन्तकवियों ने चेतावनी देते हुए अपनी बात प्रस्तुत की है किन्तु कबीर की सपाटबयानी व बिना लाग-लपेट के बात कहने की शैली सर्वथा अभिन्न है। वे इन्सान को उसकी मेधा के आधार पर ही श्रेष्ठ मानते हैं, यदि वह विवेकशील, चिन्तनशील नहीं है तो सब व्यर्थ है-

''माषी गुड़ में गड़ी रहे पंष रही लपटाई
ताली पीटै सिरि धुनै, मीठै बाई माई। ''

माया एक चक्रव्यूह है जिसमें फँसने के पश्चात् जीव जीवनपर्यन्त तड़पता है-

''नलनी सायर घर किया, दौं लागी बहुतेणि
जलही माँहे जलि मुई, पूरब जनम लिषेणि।''

वे कहते हैं इस विष बेल को जड़ से समाप्त करना ही होगा-

''कबीर कड़ई बेलड़ी, कड़वा ही फल होई।
साँध नाँव तब पाइए, जे बेलि बिछौहा होइ।''

वे माया के भयावह रूप का उल्लेख करते हुए कहते हैं-

''संतों! भक्ति सतगुरु आनी।
नारी एक पुरुष दुइ जाया, बूझहु पंडित ज्ञानी॥
पाहन फोरि गंग एक निकरी, चहुँ दिसि पानी-पानी।
तिहि पानी दुई परबत बूढ़े, दरिया लहर समानी
उड़ि माखी तरिवर ते लागी, बोलै एकै बानी।
वहि माँखी ते माँरवा नाहीं गरभ रहा बिनु पानी॥
नारी सकल पुरुष बहि खायो, ताते रहउ अकेला।
कहंहि कबीर जो अबकी समुझै, सोई गुरु हम चेला॥''

कबीर आगे कहते हैं-

''कागद केरी नाँव री पाँणी केरी गंग।
कहैं कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग॥''

जीव, जीवन व ईश्वर के रहस्य को कबीर ने मात्र दो पंक्तियों में समझा दिया है-

''हेरत-हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराइ।
बूँद समानी समन्द मैं सो कत हेरी जाइ॥''

जैसाकि पूर्व में उल्लेखित किया जा चुका है कबीर की उलटवाँसियों में विविधता है। इसी क्रम में उनकी संख्या मूलक उलटवाँसियों की बानगी देखिये-

''एक मरंटे दुइ मुये दुइ मरंतेहि चार।
चारि मरंतेहि छहि मोये चारि पुरिष दुइनारि॥''

कबीर की सर्वाधिक क्लिष्ट वे उलटवाँसियाँ हैं जिनमें उनका पाण्डित्य स्पष्ट झलकता है। इनकी विषय गूढ़ता, भाव प्रवणता, यथार्थ अर्थ बोधन आदि उस पण्डित समाज की ज्ञान परीक्षा लेने को तत्पर है जिन्होंने मेधा पर एकाधिकार स्थापित करके समाज में विभिन्न बुराइयों को उत्पन्न कर दिया है-

''एक अचम्भा देखिया, बिटिया जायौ बाप।
बाबल मेरा ब्याह करि बर उत्यम ले चाहि॥

जब लगि बर पावै नहीं, तब लगि तूँ ही ब्याहि॥''

×× ×× ××

मूसा खेवट नाव बिलाइया, मीड़क सोवै साप पहरइया।
निति उठि स्याल स्यघं सूँझूझै कहै कबीर कोई-बिरला बूझै।''

कबीर की उलटवाँसियों में भाव प्रवणता भी चर्मोत्कर्ष पर है-

''अब मोहि ले चलि नणद के बीर अपनै देसा।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा॥
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानाँ
सातौं बिरही मेरे नीपजै, पंचूं मोर किसानाँ॥''

×× ×× ×× ×× ××

''भोलै भूली खसम कैं, बहुत किया बिभचार।
सतगुरु गुरु बताइया, पुरिबला भरतार॥''

अन्त में कबीर द्वारा रचित साधनात्मक एवं विरक्ति परक उलटवाँसियों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं-

''आकासे मुखि औधां कुवाँ पाताले पनिहारि।
ताका पाँणी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि॥''

×× ×× ××

''दीपक दीया तेल भरि बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहूणा, बहुरि न आँवौ हट्ट॥''

निष्कर्ष-कबीर एवं सूर के परिप्रेक्ष्य में उलटवाँसियों के उद्भव-विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर अनुशीलन का निष्कर्ष यही प्राप्त होता है कि जहाँ हमने सूर को वात्सल्य वर्णन का सम्राट एवं कबीर को एक अक्खड़ कवि के रूप में प्रसिद्ध कर दिया है वह अप्रासंगिक एवं इन दोनों रचनाकारों के व्यक्तित्व-कृतित्व के प्रति अन्याय-सा प्रतीत होता है। मूलत: हमें आत्मा, परमात्मा एवं प्रकृति के अन्त: सम्बन्धों के गूढ रहस्य को जानने-समझने का प्रयास करना ही होगा। इस समस्या प्रक्रिया को सरल-सहज विधि से जानने अथवा उल्लेख करने हेतु हमें विभिन्न बिम्बों, माध्यमों का आश्रय भी लेना पड़ेगा। इन दोनों कूटकाव्य रचनाकारों ने भी यही किया है। सूर को वात्सल्य वर्णन में निहित कूट काव्य की गहराई को समझने की आवश्यकता है वहीं कबीर को हम अक्खड़ कह कर नकार नहीं सकते अपितु कबीर के अन्त:करण की शुद्धता की पूजा करनी होगी। कबीर के महामानव स्वरूप को जानने की प्रक्रिया में सम्मिलित होना ही होगा और इसकी सर्वाधिक उपयुक्त विधि है इनकी रचनाओं को कूटकाव्य की एनेक लगाकर विवेचित-विश्लेषित करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ऋग्वेद- 10/102/4 ''उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हषाण : कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति।'' 2. महाभारत, 1,2-102 3. वाल्मिकी रामायण-5,12,-45 4. E.M.W. Tillyard—Poetry-Direct ant oblique-Londan 1948, Page 9. 5. (i) कठोपनिषद, 2/311- ''उर्ध्वमूलोडवाक्शाख एषोऽवस्था: सनातन:'' (ii) ईशावास्योपनिषद, मंत्र-5- ''तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत:'' (वह चलता है और स्थिर भी है, वह अप्राप्य है और निकट भी है, वह सभी के अन्दर भी है और बाहर भी, वह स्थिर भी है और दौड़ने वालों से आगे निकल जाता है।) (iii) श्वेताश्वरोपनिषद् 3/19-''आर्पाण पादो जबनो गृहीता, पश्यत्य चक्षु : सश्रृणोत्यकर्ण: स वेति वेधं न च तत्यास्ति वेत्ता, तमाहुंग्रय पुरुषं महान्तम्'' 6. ऋग्वेद संहिता, 1/152/3- ''अपादेति प्रथम पद्धतीनां कस्तद् वां मित्रावरुणाचिकेत'' ऋग्वेद-4/58/3- ''चत्वारिशृंगा त्रयो अस्य पादा छे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य त्रिधा बद्धों वृषभो शेखीति महोदेवो मर्त्यांआविवेश।'' अथर्ववेद संहिता, 13/3/26 ''कृष्णाया: पुत्रो अर्जुनो रात्रया वत्सो अजायत सह द्यामधि रोहति रूहोरूरोह रोहित:॥'' 7. श्रीमद्भगवद्गीता, 15/1 ''उर्ध्वमूलमध: शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् छंदाँसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद च वेदवित्।'' 8. चर्यागीतिकोष: पृष्ठ-71 ''निसि अन्धारी मुसा अचारा। अमिअभखअ मुसा करअ अहारा। मार रे जोइआ मुसा पवणा। जेण तुटअ अवणा-गणवा॥'' धम्मपद, 21/5- ''मातंर पितंर हन्त्वा राजानो द्वे च खत्तिये रट्ठ सानुचरं हन्त्वा अनीधोयाति ब्राह्मणो।'' 9.गोरखबानी-''डूंगरि मछाजलि सुसा, पाणी में दौं लागा अरहट बहै तृसालवाँ सूलै काँटा भागा।'' 10. सूरसागर, पद संख्या-138, 11. सूरसागर, पद संख्या-6, 12. सूरसागर, पद संख्या-7 13. सूरसागर, पद संख्या-44, 14. सूरसागर, पद संख्या-27।